रोसे-गिले

भाग - २

हमारे घर का कूड़ा-करकट छिलके, जूठन, मल-मूत्र आदि अनेक प्रकार का गंद किसी कोने में जमा किया जाता है जिसको **'रूढ़ी'** कहा जाता है। इसमें अनेक प्रकार की गन्दी चीजें सड़ती-गलती रहती हैं। इस **सड़े-गले 'कूड़े'** में से **गन्दी दुर्गन्ध या 'भड़ास'** निकलती रहती है, जो अत्यन्त हानिकारक होती है।

यह **'कूड़ा-करकट'** तो घर से बाहर **दूर** होता है — परन्तु हम रोष, गिले-शिकवे, ईर्ष्या, द्वेष तथा घृणा के **अति मलिन ख्यालों तथा भावनाओं को नित्यप्रति अपने अन्दर ही मन-चित-अन्तःकरण में जमा करते जाते हैं** तथा धीरे-धीरे यर हमारी **'तुच्छ रूचि' ही बन जाती है।**

हमें कदाचित यह **महसूस ही नहीं होता** कि इस प्रकार हम **इस कूड़ा-करकट की 'दुर्गन्धमयी भड़ास'** अथवा **अदृष्ट गुप्त 'अग्नि-शोक-सागर' द्वारा जीते जी** अपने मन, तन, हृदय को जलाते जा रहे हैं।

गूझी भाहि जलै संसारा भगत न बिआपै माइआ ।। (पृ.६७३)

अंतरि क्रोधु अहंकारु है अनदिनु जलै सदा दुखु पाइ ।। (पृ. १४१५)

इसका परिणाम यह होता है कि हमें कई **शारीरिक एवं मानसिक 'रोग' लग जाते हैं, जिस कारण** हम अत्यन्त दुखी होते हैं।

गम्भीर शारीरिक रोग या तपैदिक (tuberculosis) तथा कैंसर (cancer) आदि से मृत्यु के पश्चात छुटकारा हो जाता है, परन्तु —

शक

वहम्

डर

रोष

जलन

नफरत

ईर्ष्या

द्वेष

निंदा

वैर

विरोध

स्वार्थ

कुढ़न

बदला

टकराव आदि

गंभीर 'मानसिक रोग' तो **मौत के बाद, अन्त:करण द्वारा जीव के साथ ही जाते हैं जो हमारे अगले जन्मों को भी 'नरकमयी' बना देते हैं।**

गंभीर शारीरिक बिमारियों के मरीजों को कई चीजों से **'एलॅरजी'** (allergy) होती है — जिस कारण वह बीमारी **पुन: जबरदस्त हमला करती है।**

इस प्रकार हमारी **अपनी लिखी हुई 'काली सूची'** (black list)**वाले प्राणियों में से** कई ऐसे प्राणी होते है, जिन से हमें **अत्यन्त तीव्र तथा तीक्ष्ण 'घृणा'** होती है। दूसरे शब्दों में, हमारे अन्दर इनके प्रति इतनी तीक्ष्ण **एलॅरजी** (allergy) **हो जाती है** कि इनके **याद आने से** या इनका **नाम सुनकर ही हमारे 'तन-बदन में आग लग जाती' है** तथा हमारे अन्दर घृणा, क्रोध **एवं 'बदले के बम्ब'** (bomb) **फूट पड़ते हैं** जिनके जहरीले प्रभाव में हम **बहुत समय तक जलते-झुलसते तथा 'सुलगते' रहते हैं।** जब कभी मन शान्त होता है, तब फिर कभी हल्की सी उक्साहट से **कोई और एलॅरजी** (allergy) **का बम्ब** (bomb) **फूट जाता है।**

इस प्रकार हमारा मन **अपनी लगाई हुई एलॅरजी** (allergy) **की तीव्र 'जहरीली लपटों' में लगातार जलता-झुलसता रहता है, जिस कारण हम कदाचित सुखी एवं शान्त नहीं हो सकते।**

तनु जलि बलि माटी भइआ मनु माइआ मोहि मनूर ।। (पृ.१९)

ऐसी **'एलॅरजी'** (allergy) **से 'कठोर' हुए काले मन की मलिन मानसिक 'किरणों' द्वारा हमारे आस-पास का वातावरण भी हानिकारक हो जाता है।**

धीरे-धीरे यह **मलिन मानसिक किरणें सारे विश्व के वातावरण में फैल जाती हैं।**

शारीरिक बीमारी वाले मरीज तो अपनी 'एलॅरजी' (allergy) पैदा करने वाली **बाहर की चीजों से परहेज़ कर सकते हैं** — परन्तु **अपने अन्दर मन**, चित-अन्त:करण में **स्वयं एकत्र किये हुए गिले-शिकवों से उत्पन्न मलिन रूचि की 'दुर्गन्ध' अथवा 'एलॅरजी'** (allergy) **से कोई बचाव नहीं हो सकता।**

इस प्रकार **ईर्ष्या-द्वेष, नफरत के ज़हर में पलच-पलच कर ऐसे जीव** —

चिढ़चिढ़े हो जाते हैं,
व्यर्थ सड़ते, **कुलझते** रहते हैं,
साधारण बात **पर** भी **शक** करते हैं,
छोटी-छोटी बात पर **चिढ़** जाते हैं,
व्यर्थ प्रत्येक से **झगड़ते रहते हैं**
'नौच खाने' वाला **स्वभाव** हो जाता है,
ज्वालामुखी (volcano) **की भाँति हमेशा फूटने**
के लिए तैयार रहते हैं,
हर एक पर **टीका-टिप्पणी करते हैं,**
किसी में **अच्छाई नजर नहीं आती,**
सारी दुनियाँ **बुरी-बुरी एवं खतरनाक महसूस होती है,**
सारी दुनियाँ **डरावनी लगती** है,
सदा भयभीत होकर **सहमें** रहते हैं।

मन की ऐसी मलिन **जहरीली 'दृष्टि' से** उसको दुनियाँ में —

कोई **अच्छाई** नजर नहीं आती
कोई **सुन्दरता** नहीं दिखती

कोई **दैवीय गुण** महसूस नहीं होते
कोई **उत्तम साहस** नहीं उत्पन्न होता
कोई **उत्साह** नहीं उठता
कोई **चाव** नहीं पैदा होता
प्रेम-भाव से वंचित रहते हैं
कोई **'मित्र'** नजर नहीं आता

कोई **'शुभचिंतक'** महसूस नहीं होता।

इस प्रकार इस विशाल दुनियाँ में विचरण करते हुए **जीते-जागते भी वह जीव, 'भूत-प्रेतों' वाला अकेलापन महसूस करता है,** तथा अपनी **'हउमें'** की **'सुनसान कोठरी'** (solitary cell) **में पलच-पलच कर अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ खो देता है।**

ऐसा जीव, स्वयं भी **'घोर नरक'** भोगता है, तथा इस सुन्दर सृष्टि को भी **अपनी ईर्ष्या द्वेष, वैर-विरोध की 'गुप्त अग्नि' लगाता रहता है।**

समस्त संसार की वर्तमान भयानक दशा, इस बात का प्रत्यक्ष 'प्रमाण' है।

इसलिए ऐसे मनमुख जीव ईश्वर के समस्त दैवीय **'गुणों'** तथा **'बख्शिशों'**, जैसे कि —

सत्
संतोष
दया
क्षमा
सुख
शान्ति
मैत्री-भाव
सेवा-भाव
स्वयं अर्पित करना

प्रीत

प्रेम

प्यार

चाव

उमाह

खिड़ाव

सिदक (विश्वास)

श्रद्धा

भरोसा

आदि, दैवीय भावनाओं से वंचित तथा कोरे रहते हैं।

शारीरिक बीमारियों के इलाज के लिए **परहेज़ तथा दवाईयाँ** आवश्यक हैं। जिस चीज से हमें **एलॅरजी** (allergy) हो, उससे **परहेज़ तथा त्याग भी आवश्यक है।**

परहेज़ के बिना दवाईयाँ असर नहीं करती।

इस प्रकार रोष, गिले, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, विरोध की **गंभीर मानसिक बीमारियों के इलाज के लिए भी 'परहेज़' या 'त्याग' अति आवश्यक है।**

परन्तु रोष, शिकायतों से 'परहेज़' करने की अपेक्षा, हम दुनियाँ के अवगुणों को बार-बार याद करके, अथवा निंदा-चुगली करके 'स्वाद' लेते हैं।

इस प्रकार **लोगों के अवगुणों की गंदगी के 'छिद्र' खोल-खोल कर उसकी 'दुर्गन्ध'** सूंघते हैं तथा मजा लेते हैं, जिससे हमारा मन, बुद्धि, चित्त **और भी मलिन होता रहता है।**

यह **काली मैली या दैवीय भावना वाली सफेद सूची हमारे** अपने-अपने ख्यालों, निश्चयों, भावनाओं अथवा **मन की रंगत** अनुसार जीवन के भिन्न-भिन्न अनुभवों से बनती है। क्योंकि हमारी भावनाएँ तथा निजी अनुभव अलग-अलग होते हैं इसलिए हमारी 'सूचियाँ' भी अलग-अलग होती है। एक व्यक्ति की '**काली सूची**' वाला प्राणी दूसरे की '**सफेद सूची**' में दाखिल हो सकता है।

यदि हमारा अनुभव किसी प्राणी के साथ **सुखदायी मन के अनुकूल तथा लाभदायक हो तो उसके प्रति मित्रता, खिंचाव, भरोसा, प्रेम, सत्कार तथा**

श्रद्धा भावना उत्पन्न होती है तथा वह हमारी 'सफेद सूची' में शामिल हो जाता है।

इसके ठीक विपरीत किसी दूसरे व्यक्ति का उस प्राणी से **तलख तथा हानिकारक अनुभव हो तो रोष, घृणा, क्रोध, वैर-विरोध उत्पन्न होता है तथा वह 'काली सूची'** में शामिल हो जाता है।

दूसरे शब्दों में, यह काली एवं सफेद सूचियाँ हमारे **मन की 'रंगत' पर** निर्भर होती हैं।

यदि हमारा मन **मैला** है तब हमारे ह्रदय में **'काली सूची' बढ़ती जायेगी।** इस प्रकार ज्यों-ज्यों हमारा मन **निर्मल होता जायेगा**, त्यों-त्यों काली सूची घटती जायेगी तथा श्रद्धा-भाव वाली **'सफेद सूची' बढ़ती जायेगी।**

परन्तु 'सफाई इन्सपैक्टर' (sanitary inspector) की तरह हमारा **स्वभाव — लोगों के अवगुण छाँटने तथा उनसे घृणा करना ही है।**

लोगों के **अवगुण छाँटने, नाक-मुंह चढ़ाना तथा निन्दा करनी हमारी आन्तरिक 'मैल' का प्रत्यक्ष प्रमाण एवं प्रतीक है।**

निंदकु निंदा करि मलु धोवै ओहु मलभखु माइआधारी ।। (पृ.५०७)

निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि ।। (पृ.७५५)

जउ देखै छिद्र तउ निंदक उमाहै भलो देखि दुख भरीऐ ।।
आठ पहर चितवै नही पहुचै
बुरा चितवत चितवत मरीऐ ।। (पृ.८२३)

धीरे-धीरे हमारे अन्तःकरण में इस तरह की **'गंदगी' की 'गाँठें'** अथवा **'केस फाइलें'** (case files) **बनती रहती हैं।** इन में से हम कभी किसी की — कभी किसी की **'फाइल'** खोल कर, **उसके प्रति रोष, गिले, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, वैर-विरोध के तीक्ष्ण मनोभावों से अपना तन, मन, चित, अन्तःकरण 'जलाते' रहते है।**

जिस कारण हमारा **'स्वभाव'** — लोगों की छोटी-छोटी बात पर —

शक करना
शिकायत करनी
नुक्ताचीनी करनी
अवगुण छाँटने
चिढ़ना
रोष करना
कुढ़ना
नाक चढ़ाना
माथे पर बल डालना
व्यंग्य करना
ताने मारने
जहरीले कटाक्ष करने
घृणित व्यवहार करना

अथवा अपने सम्बन्धियों, दोस्तों, मित्रों, शुभचिंतकों से **'सम्बन्ध तोड़ना'** (repulse) **तथा उनसे वैर-विरोध करना ही हो जाता है।**

इस प्रकार हम समाज (society) से अलग-अलग (isolate) हो जाते हैं तथा **स्वयं बनायी हुई 'सुनसान कोठरी' में नरकमयी जीवन व्यतीत करते है, साथ ही परमार्थ से भी दूर होते जाते हैं।**

ऐसे **लगातार तुच्छ तथा मलिन ख्यालों, मनोभावों तथा व्यवहार का प्रभाव** हमारे चेहरे दिल-दिमाग **तथा व्यक्तित्व पर भी पड़ता है।** इस प्रकार **हमारी शक्ल-सूरत भी कुरूप तथा भयानक बन जाती है तथा लोग, हम से परहेज़ करने लग जाते हैं।**

ऐसा मनमुख जीवन **'सर्प'** (snake) की भाँति होता है, क्योंकि वह दिन रात सर्प की तरह **अपने अन्दर के जहर से आप ही जलते-झुलसते-कुढ़ते रहते है,** तथा यदि कोई उनके निकट भी आये तो उसे भी **अपने जहर से जला डालते हैं।**

बिनु सिमरन जो जीवन बलना
सरप जैसे अरजारी ।। (पृ.७१२)

सपु पिड़ाई पाईऐ बिखु अंतरि मनि रोसु ।।
पूरबि लिखिआ पाईऐ किस नो दीजै दोसु ।। (पृ.१००९)

इस प्रकार अपने आप को **उत्तम, 'भद्र' पुरुष तथा 'निर्दोष' समझना** तथा दूसरों को **नीच तथा बुरा समझ कर 'नाक चढ़ाना' तथा अवगुण छाँटने हमारे अहम् की पूर्ण ढीठाई है।**

परन्तु इसके **विपरीत** गुरबाणी हमें इस प्रकार **नम्रता का उपदेश देती है —**

हम नही चंगे बुरा नही कोइ ।।
प्रणवति नानकु तारे सोइ ।। (पृ.७२८)

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ ।।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ ।। (पृ.१३६४)

यह **'मानसिक परहेज़'** है, जो मानसिक 'सतह' पर अथवा ख्यालों एवं भावनाओं द्वारा ही हो सकता है।

इस **'मानसिक परहेज़'** का एकमात्र अति सरल एवं '**सफल**' **उपाय** यही है कि जब हमारे अन्दर **किसी के विरोध में कोई निम्न-बुरा ख्याल आये या गिले-शिकवे का भाव उठे, तो उसे तुरन्त —**

'रहने दो'
'कोई बात नहीं'
'तो क्या हुआ'
'जाने दो'
'छोड़ो परे'

कह कर, उसी समय 'भुलाकर' (forget**), 'त्याग' (**ignore**) दिया जाये।**

ऐसा उत्तम व्यवहार, **दैवीय गुण 'क्षमा' से ही उत्पन्न हो सकता है तथा 'क्षमा' का ही प्रतीक एवं प्रकटाव है।** इसलिए **'क्षमा' के दैवीय गुण** के विषय में कुछ विचार प्रस्तुत किए जाते है —

'क्षमा' शब्द के **अर्थ** है —

माफ करना
बख्श देना (माफ कर देना)
गलती को भुला देना

‘क्षमा’ की कई मानसिक श्रेणियाँ हैं —

1. उपरी **मन से** दूसरे की गलती माफ तो कर देना, परन्तु अन्तःकरण में **‘रोष’** या **‘वैर’ रखना ।**

इस प्रकार **करने से मन की मैल अनजाने ही और बढ़ती तथा जमा होती रहती है, अन्ततः मानसिक ‘रोष’ का ‘बंब’ फूट पड़ता है। यह पूर्णतया ‘पाखण्ड’ तथा अपने आप से ‘धोखा’ है। इसको क्षमा नहीं कहा जा सकता।**

2. सच्चे दिल से गलती माफ कर देनी।

इस प्रकार **मन में ‘रोष’ तो आता है,** परन्तु दिमागी ज्ञान द्वारा **‘रोष’ को ‘भूलने’ की कोशिश करते है।**

इससे ‘रोष’ तो चाहे मिट जाए परन्तु **‘रोष’ की मैल का ‘दाग’** अथवा **‘धब्बा’ अन्तःकरण की गहराइओं में टिका रहता है।**

3. दूसरे के अवगुणों को पूर्णतया अनदेखा करके उसका ‘भला’ करना। यह ‘उल्टी’ खेल है, जो बड़ी कठिन है।

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ ।।

देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ ।। (पृ.१३८२)

4. मन में दूसरे की बुराई का असर ‘ग्रहण’ ही न करना। यह आध्यात्मिक अवस्था है, जिस में हृदय नाम-सिमरन तथा इलाही ‘प्रेम-स्वैपना’ में इतना ‘मगन’ होता है कि उस पर बाहर के निम्न मलिन व्यवहार का कोई असर नहीं होता।

उसतति निंदा दोऊ तिआगै खोजै पदु निरबाना ।।
जन नानक इहु खेलु कठनु है किनहूं गुरमुखि जाना ।। (पृ.२१९)

कोई भला कहउ भावै बुरा कहउ हम तनु दीओ है ढारि।। (पृ.५२८)

परन्तु हम **‘क्षमा’** के दैवीय गुण से **बिल्कुल अनजान है** या जानबूझ कर **‘मस्त’ हुए रहते है,** जैसे **‘क्षमा’ का उपदेश किसी अन्य व्यक्ति के लिए उच्चारित किया गया हो।**

'ईंट का जवाब पत्थर से देना' ही हम अपना कर्त्तव्य **समझते हैं** तथा धीरे-धीरे यह हमारी **आदत या स्वभाव बन जाता है।** इसी प्रकार संसार में खींचतान, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध, झगड़े तथा लड़ाइयाँ बढ़ती जा रही हैं, जिस द्वारा संसार 'नरक' रूप बन रहा है।

आदिकाल से ही गुरूओं, अवतारों, पीरों, पैगम्बरों द्वारा इन्सान को दूसरों के अवगुणों या दोषों को 'माफ' या **'क्षमा' करने के लिए प्रेरणा की गयी है।** किसी ने **तीन बार** किसी ने **सात बार** तथा किसी ने **सत्तर बार 'माफ' करने का 'उपदेश' दिया है।**

परन्तु धंन गुरू नानक साहिब ने महसूस किया कि इन्सान तो **सदा भूलनहार है।**

लेखै गणत न छूटीऐ काची भीति न सुधि ।।
जिसहि बुझाए नानका तिह गुरमुखि निरमल बुधि ।। (पृ.२५२)

लेखहि कतहि न छूटिऐ खिनु खिनु भूलनहार ।।
बखसनहार बखसि लै नानक पारि उतार ।। (पृ.२६१)

'बच्चे' — अनेक गलतियाँ करते हैं, परन्तु **'माँ' अपने 'माँ-प्रेम' में बच्चे के सारे अवगुणों को अनदेखा करके, बच्चे से प्यार करती है।**

सुतु अपराध करत है जेते ।।
जननी चीति न राखसि तेते ।। (पृ.४७८)

इसी प्रकार हम अकाल पुरुष के बच्चे हैं तथा **इलाही 'माँ-बाप' के नाते, ईश्वर अपने इलाही 'बिरद' (कर्त्तव्य) अनुसार हमारी गलतियाँ या अवगुणों को याद नहीं रखता तथा सदा माफ या क्षमा करता रहता है** — क्योंकि परमेश्वर को पता है कि **इन्सान भूलनहार है।** यदि ईश्वर भी हमारे सारे अवगुणों या पापों को **याद रखे** या कर्मों **के लेखों का विचार करे तो 'मायिकी नरक' में से हमारे निकलने की कोई आशा ही नहीं हो सकती।**

हरि जीउ लेखै वार न आवई तूं बखसि मिलावणहारु ।। (पृ. १४१६)

इस कारण **इन्सान का कल्याण ईश्वर के दैवीय गुण 'क्षमा' के 'बिरद' द्वारा ही हो सकता है।**

गुरबाणी में दर्शाया है कि अकाल पुरूष हमारी अनेक त्रुटियों, भूलों, अज्ञानता तथा पापों को अपने —

‘सद बख्शिंद’
‘सदा मेहरवान’
‘अवगुण को न चितारदा’
‘बहुत इआनप जरत’
‘पतित पावन’

के इलाही ‘बिरद’ अनुसार अनदेखा करके ‘भुला’ देता है तथा फिर भी विमुख जीवों का ‘प्रतिपालन’ करता है तथा ‘नित सार समालता’ (उनकी देख-रेख करता) **है ।**

अकिरतघणा नो पालदा प्रभ नानक सद बखसिंदु ।। (पृ.४७)

प्रतिपालै नित सारि समालै इकु गुनु नही मूरख जाता रे ।। (पृ.६१२)

अकिरतघणा का करे उधारु ।।
प्रभु मेरा है सदा दइआरु ।। (पृ.८९८)

दीन दइआल दइआनिधि दोखन देखत है
पर देत न हारै ।। (पृ.१०)

ईश्वर के इस **‘दैवीय बिरद’** के हम तभी ‘पात्र’ बनते हैं, जब अपनी त्रुटियों या अवगुणों को —

महसूस करें
पछतावा करें
तौबा करें
कानों को हाथ लगायें
त्राहि-त्राहि कर

गुरू की शरण में आत्म-समर्पण करें।

जिउ जानहु तिउ राखु हरि प्रभ तेरिआ ।।
केते गनउ असंख अवगण मेरिआ ।। (पृ.७०४)

हम मूरख मुगध अगिआन मती सरणागति पुरख अजनमा ।।
करि किरपा रखि लेवहु मेरे ठाकुर हम पाथर हीन अकरमा ।। (पृ.७९९)

तुम्ह समरथा कारन करन ।।
ढाकन ढाकि गोबिद गुर मेरे मोहि अपराधी सरन चरन ।।......
हमरो सहाउ सदा सद भूलन
तुम्हरो बिरदु पतित उधरन ।। (पृ.८२८)

त्राहि त्राहि सरणागती हरि दइआ धारि प्रभ राखु ।। (पृ.९९७)

कहि नानक सभि अउगन मो महि राखि लेहु सरनाइओ ।। (पृ.१२३२)

त्राहि त्राहि करि सरनी आए जलतउ किरपा कीजै ।। (पृ.१२७०)

अपनी करनी करि नरक हू न पावउ ठउरु
तुमरो बिरदु करि आसरो समार हौं । (क.भा.गु. ५०३)

परन्तु हमारा मैला एवं घमण्डी मन हमें अपने अवगुण 'स्वीकार' करने से रोकता है । बल्कि हम अपनी **प्रत्येक त्रुटि को छुपाने या ढकने के लिए अपनी कूड़ चतुराई से अनेक ढकोंसले घड़ते हैं, तथा अपनी गलती को उचित घोषित करने के लिए कई बहानों या हथकंडों से 'पर्दा डालने' की कोशिश करते हैं ।**

इस प्रकार हमारा 'दोष' **या जुर्म दोहरा** (double) **हो जाता है** —

पहला — **गलती करने का दोष,** तथा

दूसरा — **गलती को छुपाने का या 'उचित घोषित करने' का दोष ।**

वास्तव में हमारा अहम्ग्रसत मन-भ्रम के भुलाव में स्वयं को '**दोषहीन' निर्मल एवं 'पूर्ण' समझता है तथा यह बात मानने को तैयार ही नहीं कि** हमारे अन्दर कोई '**मैल' अथवा 'काली सूची' हो सकती है ।**

लालटेन (lantern) की चिमनी यदि साफ हो, तो अन्दर का प्रकाश बाहर प्रकट होना अनिवार्य है । यदि **'प्रकाश'** बाहर ही ओर पूरा नहीं आता, तब **चिमनी मैली होती है ।**

जीव के अन्तरात्मा में हरि की 'निर्मल ज्योति'- निस बासुर (दिन रात) **जगमगा रही है ।** यदि '**इलाही ज्योति' का 'प्रतिबिम्ब' हमारे मन पर नहीं पड़ता या 'गोबिंद नहीं गजता' तब यह पक्का प्रमाण है** कि 'रोष-शिकायतों' 'ईर्ष्या-द्वेष' आदि की **मलिन भावनाओं से हमारा मन अत्यन्त मैला हो गया है ।**

यदि हमारा मन **निर्मल** हो तब 'इलाही-ज्योति' का 'प्रतिबिम्ब' या **'आत्मिक रोशनी' हमारे मन-चित-अन्त: करण को 'जगमगा' देती है ।**

गई गिलानि साध कै संगि ।।

मनु तनु रातो हरि कै रंगि ।। (पृ. ८९२)

इसलिए **मन में गिले-शिक्वे, ईर्ष्या-द्वेष आदि की मलिनता होते हुए भी अपने आप को 'भद्र पुरुष' एवं 'पूर्ण' समझना, हमारे 'अहम् की ढीठताई' है तथा अज्ञानता का दीर्घ 'भ्रम-भुलाव' है** तथा अपने-आप **से 'धोखा' है ।**

इस प्रकार **हमारा मन और भी मैला होता जाता है** तथा हम मायिकी रसातल की ओर खिसकते जाते हैं ।

दूसरी ओर यदि **सत्संग करते हुए** हमें अपनी **गलती या अवगुण महसूस हो जाएं तथा हम पश्चाताप करके माफी माँगें** तो यह मानसिक गुण जैसे कि —

महसूस करना
पश्चाताप करना
तौबा करनी
लज्जित होना
त्राहि-त्राहि करनी
सच्चे दिल से माफी माँगनी

हमारी आत्मिक उन्नति के लिए 'सीढ़ी' बन जाती है । इस द्वारा हम और ऊँचे, उत्तम, सुहावने आत्मिक मण्डलों की ओर **अग्रसर हो सकते हैं।**

जहाँ ईश्वर स्वयं 'सद बख्शिंद सदा मिहरवाना' है — वहाँ हम इन्सानों को भी **इन दैवीय गुणों को ग्रहण करने की ताकीद की गयी है —**

'रोस न काहू संग करहु'
'आपन आप बीचारि'

‘पर का बुरा न राखहु चीति’
‘बुरे दा भला करि’
‘गुसा मनि न हंढाइ’
‘परनिंदा सुणि आपु हटावै’
‘साझ करीजै गुणह केरी’
‘छोडि अउगुण चलीऐ’
‘दया छिमा तन प्रीति’

हमारी कितनी मूर्खता एवं ढिठाई है कि हम **‘अपने’ अनेक अवगुणों की माफी के लिए तो उपरी मन से प्रार्थनाएँ करते हैं — परन्तु स्वयं लोगों की त्रुटियों को एक बार भी माफ करने या भुलाने के लिए तैयार नहीं,** बल्कि लोगों की हर एक त्रुटि को **बार-बार याद करके हर बार उस पर** परत (coating) चढ़ाते जाते हैं ।

हमारा मन ‘काली सूची’ (black list) वाले जीवों से इतना ‘एलर्जिक’ (allergic) हो जाता है कि हम उनके **उत्तम गुणों पर भी अपनी घृणा की ‘मैली रंगत’ चढ़ा कर उनके गुणों को भी ‘कम करने की’ कोशिश करते हैं ।**

इस प्रकार हम अपने हृदय में **लोगों के अवगुणों का ‘कूड़ा-करकट’ बढ़ाते जाते हैं,** तथा इस **स्वयं एकत्र किये ‘कूड़े’ की ‘दुर्गन्धमयी सड़न’ से अपने मन को जलाते जाते हैं ।**

इन्सानों की यह **‘छलपूर्ण’ प्रवृत्ति है** कि वह चाहते हैं कि उनके अपने अनेक पाप या त्रुटियाँ तो **लोग माफ करते जायें या भुलाते जायें** —परन्तु **वह स्वयं दूसरों की एक भी त्रुटि माफ करने या भुलाने को तैयार नहीं होते ।**

इससे स्पष्ट होता है कि इन्सान कितने —

खुदपसन्द
स्वार्थी
कृतघ्न
स्वयं प्रधान

पाखण्डी
कपटी

हैं ।

ऐसा मलिन स्वभाव या 'प्रवृत्ति' — अहम् का ढीठपन तथा अज्ञानता का प्रतीक है ।

हम **स्वयं बने 'जॅज' (**self appointed judge**)** तो लोगों के अवगुणों के विषय में फैसला करने या '**आरोप लगाने के लिए 'तत्पर' रहते हैं — पर जब कोई हमारे अवगुण प्रकट करता है, तो हम घबराते हैं।**

इस तरह हम **अपने 'आप' को तथा लोगों को धोखा दे सकते हैं, परन्तु धर्मराज के 'दण्ड' से नहीं बच सकते ।** ऐसे **अहम् के ढीठपन के कारण हम लोक-परलोक दोनों खो बैठते हैं तथा आवागमन के चक्र में बार-बार दुखी होकर नरक भोगते रहते हैं ।**

जतन करै मानुख डहकावै ओहु अंतरजामी जानै ।।
पाप करे करि मूकरि पावै भेख करै निरबानै ।। (पृ. ६८०)

कबीर जेते पाप कीए राखे तलै दुराइ ।।
परगट भए निदान सभ जब पूछे धरम राइ ।। **(**पृ. १३७०**)**

यदि कहीं परीक्षा (examination) में बच्चा फेल हो जाए, तो उसको पुन: परीक्षा देने का मौका (chance) दिया जाता है। यदि वह फिर भी फेल हो जाए तो उसको **बार-बार विद्यक उन्नति के अवसर (**chances**) दिये जाते हैं ।**

इन्सान भूलनहार होने के कारण, बार बार गलतियाँ करता है तथा **परमेश्वर, अपने 'सद बख्शिंद', 'सदा मिहरवाना', 'अउगुण को न चितारदा' के इलाही 'बिरद' (कर्त्तव्य) द्वारा, उसको जीवन सुधार के लिए, 'साध संगत'** तथा **'गुरू उपदेश' द्वारा 'बार-बार' अवसर (**chances**)** देता रहता है, तथा यह अवसर केवल एक जन्म तक सीमित नहीं होते, बल्कि **कई जन्मों तक रूह की आत्मिक उन्नति के लिए लगातार मौके(**chances**) दिये जाते हैं, जब तक कि वह 'रूह' माया के 'अंध गुबार' में से निकल कर आत्मिक मंडल में 'समा' नहीं जाती ।**

सृष्टि में हर वस्तु **बदल रही है** — केवल ईश्वर तथा उसका 'नाम' अटल तथा स्थिर है ।

ऐसे परिवर्तनशील संसार में प्रत्येक जीव अपने-अपने **वातावरण तथा 'संगत' अनुसार बदल रहा है ।**

जो जीव आज मनमुख है, वह 'संगत' द्वारा धीरे-धीरे गुरमुख बन सकता है । इसके विपरीत बुरी संगत अथवा **कुसंगत द्वारा जीव गुरुमुख अवस्था से मानसिक मंडल की ओर खिसक सकता है ।**

परन्तु **हम इस दैवीय सिद्वान्त के ठीक विपरीत, दूसरों की गलतियों को क्षमा करके, एक बार भी उनको सुधारने या तरक्की करने का मौका** (chance) **देने के लिए तैयार नहीं,** बल्कि उसको **सदा के लिए रद्द** (condemn) **करके अपनी पक्की 'काली सूची' में चढ़ा देते हैं ।**

इस तरह हम किसी का **एक अवगुण देख कर** ही उसको अपनी बनायी हुई काली सूची में **सदा के लिए पक्की तरह शामिल कर देते हैं** तथा उसके मानसिक **बदलाव की संभावना को आँखों से ओझल कर देते हैं।** यह हमारे **'अहम् की पूर्ण ढीठताई' है ।**

हमारी इस अहम् की ढीठताई के **बावजूद भी परमेश्वर प्रत्येक रूह को आत्मिक उन्नति के लगातार मौके** (chances) देता रहता है । क्योंकि **इलाही मंडल में कोई 'काली सूची'** (black list) नहीं है । इलाही मंडल में सारे **जीव 'रूहानी बच्चे' ही माने जाते हैं ।**

बुरा भला कहु किस नो कहीऐ सगले जीअ तुम्हारे ।। (पृ. ३८३)

किस नो कहीऐ नानका सभु किछु आपे आपि ।। (पृ. ४७५)

इस विषय पर गुरबाणी हमारा इस प्रकार मार्ग दर्शन करती है —

मनहि न कीजै रोसु जमहि न दीजै दोसु
निरमल निरबाण पदु चीन्हि लीजै ।। (पृ. ९७३)

ऐको वरतै अवर न कोइ ।।
मनि रोसु कीजै जे दूजा होइ ।। (पृ. ८४२)

मेरे मन काहे रोसु करीजै ।।
लाहा कलजुगि रामनामु है
गुरमति अनदिनु हिरदै रवीजै ।। (पृ. १२६२)

हमारे समस्त **तुच्छ घातक ख्याल या भावनाएँ हमारे मन की मैल की प्रतीक अथवा 'दुर्गन्ध' ही है । निर्मल दैवीय मन में से तुच्छ मलिन ख्याल या भावनाएं उत्पन्न ही नहीं हो सकती ।**

इसके विपरीत, मलिन मन में दैवीय ख्याल या 'भक्ति-भाव' पैदा ही नहीं हो सकता तथा हम **आध्यात्मिक मार्ग से दूर होते जाते हैं।**

मनि मैले भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ ।। (पृ. ३९)

मनु मैला सचु निरमला किउ करि मिलिआ जाइ ।। (पृ. ७५५)

'अहम' ग्रस्त मन में से ही निम्न मलिन ख्याल या वासनाएं उत्पन्न होती हैं । गुरबाणी में ऐसे **अहम् ग्रस्त जीव को 'मनमुख' या 'साकत'** कहा गया है —

साकत हरिरस सादु न जाणिआ **तिन अंतरि हउमै कंडा हे ।।**

जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि
जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ।। (पृ. १३)

मनमुख मैले मलु भरे हउमै त्रिसना विकारु ।। (पृ. २९)

अम्रितु कउरा बिखिआ मीठी ।।
साकत की बिधि नैनहु डीठी ।।
कूड़ि कपटि अहंकारि रीझाना ।।
नामु सुनत जनु बिछूअ डसाना ।। (पृ. ८९२)

साकत नर अहंकारी कहीअहि
बिनु नावै ध्रिगु जीवीजै ।। (पृ. १३२५)

इसलिए यदि हम अपने **मलिन 'मनमुख' मन को बदल कर, उत्तम दैवीय गुणों वाला 'गुरुमुख' बनाना चाहते हैं, तब हमें नित्यप्रति जीवन का व्यवहार,** मनमुख अथवा साकत के **ठीक 'विपरीत' धारण करना पड़ेगा ।**

साकत सिउ करि उलटी रे ।। (पृ. ५३५)

इसका मतलब यह है कि हमें अपने ख्यालों, मनोभाव, भावनाओं, स्वभाव तथा 'जीवन प्रवाह' को '**आत्मपरायण' करना पड़ेगा,** अन्यथा हम उसी **पुरानी मलिन 'जीवन-धारा' में ही जलते-सड़ते रहेंगे ।**

यदि कहीं से 'गन्दगी' की 'दुर्गन्ध' आती हो, तो हम उससे दूर भाग जाते हैं या उस गन्दगी को दूर फैंक देते हैं तथा इस प्रकार '**दुर्गन्ध'** से **बच जाते हैं ।** परन्तु हमारे **अन्दर मलिन मन में से उत्पन्न हुई 'दुर्गन्ध' से हम बच नहीं सकते,** क्योंकि यह तो **हमारे अन्दर तुच्छ ख्यालों, मलिन रूचियों तथा गन्दी भावनाओं की 'भड़ास' होती है ।**

गन्दगी की यह 'भड़ास' अवश्य ही अपने आप प्रकट होती रहती है, जिससे हमारा **वातावरण भी गन्दा हो जाता है ।**

यह **स्वयं एकत्र की हुई अन्दर की मानसिक 'दुर्गन्ध'** तो हर जगह, हर वक्त **हमारे साथ 'चिपकी' रहती है** तथा हमारे जीवन के **हर पक्ष में सहज-स्वभाव प्रकट होती रहती है,** जिस कारण हम **समाज से अलग (**isolate**) तथा परमार्थ से दूर होते जाते हैं ।**

इस प्रकार धीरे-धीरे हमारी **'सूंघने की शक्ति' अथवा 'विवेक बुद्धि' नहीं रहती,** जिस कारण हमें अपनी '**मानसिक दुर्गन्ध' का 'अहसास' ही नहीं होता ।**

घर के अन्दर या गलियों में गन्दगी की बदबू हो, तो हम उससे बचने के लिए **छत पर चढ़ जाते हैं** — जहाँ स्वच्छ ताज़ी हवा प्राप्त होती है ।

इसी प्रकार यदि हम इस **मलिन 'मानसिक दुर्गन्ध' से बचना चाहते हैं, तो हमें उच्च विचारों, दैवीय रुचियों, तथा प्रेम-भावनाओं वाले पवित्र-पावन, सुहावने एवं दैवीय 'वातावरण' अथवा 'मण्डल' में विचरण करना पड़ेगा, जो कि 'सति संगति' अथवा 'साध संगति' में ही प्राप्त हो सकता है ।**

साध संगति होइ निरमला कटीऐ जम की फास ।। (पृ. ४४)

साध संगि मलु लाथी ।।
पारब्रहमु भइओ साथी ।। (पृ. ६२५)

संता संगति मिलि रहै ता सचि लगै पिआरु ॥ (पृ. ७५६)

संत मंडल महि निरमल रीति ॥
संतसंगि होइ एक परीति ॥ (पृ. ११४६)

बाहर के निम्न मलिन 'प्रभाव' से बचने के लिए गुरुबाणी हमारा इस प्रकार मार्गदर्शन करती है —

'साझ करीजै गुणह केरी'
'छोडि अवगण चलीऐ'
'बुरे दा भला करि'
'गुसा मनि न हंढाइ'
'पर का बुरा न राखहु चीत'
'निंदा भली किसै की नाही'
'परनिंदा सुणि आपु हटावै'
'दइआ जाणै जीअ की'
'खिमा धीरजु' की आदत
देख कर अनदेखा करना
'ना को बैरी नही बिगाना'
'चलण जाणि जुगति मिहमाणा'
'रोस न काहू संग करहु'
'आपन आपु बीचारि'

उपरोक्त अन्तिम पक्ति 'आपन आपु बीचारि' के अर्थ अति गहरे तथा महत्त्वपूर्ण हैं ।

हम किसी व्यक्ति के **'एक' अवगुण को देखकर उस पर सदा के लिए घृणा योग्य, 'दोषी' या 'अपराधी' का 'ठप्पा' लगाकर उसे अपनी 'काली सूची' (black list) में शामिल कर लेते हैं** तथा उस पर **सदा के लिए 'तिरस्कार योग्य' कलंक या 'आरोप' लगा देते हैं ।**

इस प्रकार हम **उसके अन्य सारे 'गुण' या 'अच्छाईयों' को नजरों से दूर कर देते हैं ।** हमारी **'घृणा'** उसके लिए इतनी बढ़ जाती है कि उसके **'गुण' या**

अच्छाइयों को सुनना भी पसन्द नहीं करते । यदि वह सच्चे दिल से माफी भी माँगे अथवा 'सोने' का भी बन कर आ जाये तो भी हम उसको अपनी **'काली सूची' (black list) में से निकालने के लिए तैयार नहीं होते ।**

इस प्रकार हम उसके **'अवगुणो' को ही 'ग्रहण' करते हैं तथा 'गुणों' का 'तिरस्कार' करते हैं** — परन्तु गुरबाणी इसके **ठीक विपरीत उपदेश देती है ।**

गुण संग्रहि अउगण सबदि जलाए ॥ (पृ. २२२)

जो गुण संग्रहै तिन्ह बलिहारै जाउ ॥ (पृ. ३६१)

साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगण चलीऐ ॥ (पृ. ७६६)

दूसरी ओर **हम अपने अवगुणों से बेखबर या अनजान हैं,** या जानबूझ कर उनको **'छुपाने' की कोशिश करते हैं, तथा अपने गुणों का ही 'ढोल बजाते' रहते हैं।**

इस प्रकार हम **'पाखण्ड' करते हैं तथा अपने 'आप' से धोखा करते हैं।**

आपस कउ जो भला कहावै ॥
तिसहि भलाई निकटि न आवै ॥ (पृ. २७८)

आपस कउ बहु भला करि जाणहि मनमुखि मति न काई ॥ (पृ. ६०१)

यदि लोग हमें भी 'काली सूची' में शामिल करके **हमारे साथ 'घृणापूर्ण व्यवहार' करते हैं, तब हम जलते-कुढ़ते एवं तड़पते हैं तथा गिले-शिकवे करते हैं।**

परन्तु हम यह **भूल जाते हैं** कि जिस प्रकार का व्यवहार हम **लोगों के साथ करते हैं,** उसका ही **'प्रतिबिम्ब' या परिणाम पुनः हमारे ऊपर पड़ता है।**

जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना ॥ (पृ. ४३३)

जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ ॥ (पृ. ४७४)

जैसा करे सु तैसा पावै ॥
आपि बीजि आपे ही खावै ॥ (पृ. ६२२)

जैसा करे सु तैसा पाए॥
अभिमानी की जड़ सरपर जाए ॥ (पृ. ८७०)

धीरे-धीरे दूसरों के **'छिद्र खोजने'** तथा **'नाक चढ़ाना'** ही **हमारा 'स्वभाव' या आदत बन जाती है** — जिसमें हमारे **मलिन मन को 'स्वाद' आता है।**

इस प्रकार —

हमारा **मन मलिन एवं अशान्त** होता जाता है।
रोष-शिकायत एवं वैर-विरोध **बढ़ते जाते हैं ।**
'काली सूची' लम्बी होती जाती है।
हम जलते-भुनते एवं कुड़ते रहते हैं।
परमार्थ से दूर होते जाते हैं।
हमारे **उत्तम गुण भी 'गलते' जाते हैं ।**
'ईश्वर' से **'नास्तिक' होते जाते हैं।**
अमूल्य मानव जीवन व्यर्थ खो देते हैं।

यह मानसिक **रोष शिकायतें,** ईर्ष्या-द्वेष आदि सामाजिक जीवन तक ही सीमित नहीं — **बल्कि धार्मिक मण्डल में भी प्रचलित हैं।** जिस कारण तथाकथित धार्मिक लोग या 'मजहब' भी आपस में **एक दूसरे के अवगुण छाँट कर ईर्ष्या-द्वेष द्वारा 'मजहबी तअसुब' का जहर फैलाते हैं।**

इसीलिए गुरबाणी में लोगों के **अवगुण छाँटने की अपेक्षा 'आपन आपु बीचारि' का ताकीदी उपदेश दिया गया है।**

बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरु परेसानी माहि ।। (पृ. ७२७)

मन की पत्री वाचणी सुखी हू सुखु सारु ।। (पृ. १०९३)

तभी **'बाबा फरीद जी'** ने लिखा है —

फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख ।।
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नीवां करि देखु ।। (पृ. १३७८)

इसका मतलब यह है कि दूसरों के **अवगुणों को याद करके उनके खिलाफ 'काले लेख' न लिखो अथवा 'आरोप' न लगाओ,** बल्कि अपने हृदय अथवा अन्त:करण की गहराईयों में **छुपे हुए गुप्त अवगुणों की 'खोज' करके उनकी निवृत्ति की चिन्ता करो।**

परन्तु **'बाह्ममुखी' मनमुख जीव 'आपनु आपु बीचारि'** (introspection) **की 'अर्न्तमुखी खेल' से अनजान हैं। यह दैवीय गुप्त अर्न्तमुखी 'खेल' कठिन है, जो साध संगति के मार्गदर्शन के बिना आचरण में नहीं लायी जा सकती।**

इस विषय में एक उदाहरण प्रस्तुत है, कि **'घाव' लगे** जानवर को मक्खियाँ, कोवै, चिड़ियाँ तथा अन्य पक्षी **चोंच मार-मार कर दुखी करते हैं** तथा वह इस मार से बचने के लिए **पानी में जाकर अपने आप को बचाता है।** जितना समय वह पानी में रहता है, उतना समय बचा रहता है। **जब भी बाहर आता है, तभी उसे पक्षी तंग करना शुरू कर देते हैं।**

इस उदाहरण से हमें बहुत ही सुन्दर शिक्षा मिलती है कि हम भी जितनी देर तक **मन को 'अर्न्तमुखी' करके सिमरन में लगाये रखेगें, उतनी देर तक बाहर के दुखदायी 'मायिकी प्रभाव' से बचे रहेंगे,** तथा हमें किसी से भी **'रोष' करने का अवसर ही नहीं मिलेगा।** इस प्रकार हम न **'बाहर का असर लें' तथा न ही हमें 'गिले-शिक्वे' दुख दें।** परन्तु यह **सारी खेल 'अर्न्तमुखी' होने की है,** तथा यह विधि गुरुमुख-प्यारों एवं महापुरुषों अथवा **'साध-संगति' के बिना सीखी नहीं जा सकती।**

बिसरि गई सभ ताति पराई ।।
जब ते साध संगति मोहि पाई ।।
ना को बैरी नहीं बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई ।। (पृ.१२९९)

साधसंगि चिंत बिरानी छाडी ।।
अहंबुधि मोह मन बासन दे करि गडहा गाडी ।।रहाउ।।
ना को मेरा दुसमनु रहिआ ना हम किस के बैराई ।।
ब्रहमु पसारु पसारिओ भीतरि सतिगुर ते सोझी पाई ।।
सभु को मीतु हम आपन कीना हम सभना के साजन ।।
दूरि पराइओ मन का बिरहा ता मेलु कीओ मेरै राजन ।। (पु.६७१)

इस लेख का **सारांश** गुरबाणी के प्रकाश में यूँ दर्शाया जा सकता है —

रोसु न काहू संग करहु आपन आप बीचारि ।।
होइ निमाना जगि रहहु नानक नदरी पारि ।। (पृ.२५९)

मनहि न कीजै रोसु जमहि न दीजै दोसु
निरमल निरबाण पदु चीन्हि लीजै ।। (पृ.९७३)

मेरे मन काहे रोसु करीजै ।।
लाहा कलजुगि राम नामु है
गुरमति अनदिनु हिरदै रवीजै ।। (पृ.१२६२)

फरीदा जो तै मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि ।।
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिन्हा दे चुंमि ।। (पृ.१३७८)

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ ।।
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ ।। (पृ.१३८२)

इस विषय में महत्वपूर्ण '**धुण्डी**' या मूल समस्या (ईश्वर की)

'भूल' या 'याद'

में है।

मनुष्य के जीवन को —

अच्छा	या	बुरा
निर्मल	या	मलिन
दैवीय	या	मायिकी
सुखी	या	दुखी
गुरुमुख	या	मनमुख

बनाने के लिए —

मानसिक 'अवगुणों' को 'भुलाना' या 'त्यागना'

तथा

'दैवीय गुण' ग्रहण करना तथा उनका 'अभ्यास करना' अत्यन्त आवश्यक है।

हमारे घर किसी विशेष व्यक्ति (V.I.P.) ने आना हो तो हम घर के अन्दर तथा आस-पास की बहुत सफाई करते हैं **ताकि कोई गन्दगी न दिखाई दे।**

बाहर की सफाई तो हम रखते ही है परन्तु जिस हृदय में पातशाहों के पातशाह धन गुरू नानक के आगमन की आशा रखते हैं, उस हृदय के अन्दर रोष, गिले, ईर्ष्या, द्वेष, नफरत, वैर-विरोध आदि अनेक अवगुणों का गन्दा 'कूड़ा-करकट' जमा करते जाते हैं! जिस में से अत्यन्त सड़न तथा 'दुर्गन्ध' निकलती रहती है। ऐसे मलिन हृदय में निर्मल ज्योति स्वरूप 'सतिगुरू' का प्रवेश कैसे हो सकता है।

पर का बुरा न राखहु चीति ॥
तुम कउ दुखु नही भाई मीत ॥ (पृ.३८६)

ऊठत बैठत हरि भजहु साधू संगि परीति ॥
नानक दुरमति छुटि गई पारब्रहम बसे चीति ॥ (पृ.२९७)

Forgive and forget
Malice against none
Love for all.